ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol.-5* Issue-1* February- 2020
Innovation The Research Concept

पद्मश्री डॉ0 कपिलदेव द्विवेदीकृत् भक्ति–कुसुमांजलि में देव विषयक चिन्तन

ममता शर्मा
शोधार्थी,
संस्कृत विभाग,
हण्डिया पी0जी0 कॉलेज,
बीर बहादुर सिंह पूर्वान्चल विश्वविद्यालय
हण्डिया प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, भारत

Paper Submission: /04/2020
Date of Acceptance: /04/2020
Date of Publication: 04/2020

सारांश

भक्ति–कुसुमांजलि पद्मश्री डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी कृत् गीतिकाव्य है। जिसमें 100 भक्तिपरक गीतो का संग्रह है। इस गीतिकाव्य में प्रयुक्त श्लोंको का श्रोत द्विवेदी जी ने यजुर्वेद, ऋग्वेद, अथर्ववेद, उपनिषद् व श्रीमद्भगवद्गीता आदि को बनाया है । वेदों आदि में वर्णित सुक्तियों में देवता के अनेक स्वरूपों का वर्णन किया गया है। अतः वेदों से ही सम्बन्धित होने के कारण इस गीतिकाव्य में भी देवता के स्वरूपव उनके जगत के निर्माण, प्रलय आदि कार्य से अध्येता को परिचित कराया गया है। देवता को ही ब्रह्म, ईश्वर, परमात्मा, प्रजापति, विराट पुरूष, परमेश्वर आदि नामों से सम्बोधित किया गया है। देवता ही तीनो लोको में व्याप्त हैं। वह ही इस पृथ्वी के कर्ता, नियन्ता तथा पालक हैं। वे ही प्रकाशमान अन्धकार के नाशक हैं, तथा सुख, शान्ति, धन–वैभव और सिद्धियॉ प्रदान करते हैं। इस काव्य में मनुष्य का शरीर देवो की पूरी बताया गया हैं, जिसमें की देवता निवास करते हैं। देवता, मन–वचन–कर्म से तपस्वी पुरूष को ही अपनाते हैं, नीच तथा अकर्मण्य का कभी साथ नहीं देते है। इसमें मानव जीवन का मूल लक्ष्य मुक्ति तथा साधन तप को बताया गया है। इस काव्य में यथास्थान कुछ दार्शनिक, अध्यात्मिक, शास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक अनुभूतिमूलक भाव भी उपस्थित हैं, जो कि सहृदयों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। इस गीतिकाव्य में विशेष रूप से भक्ति को ही दिव्य–आत्मशक्ति कहा गया है। यह भक्ति ही सद्भावना का आभिर्भाव करती है, गुणों का प्रकटीकरण तथा दुर्गुणों को दूर करती हुई भुक्ति–मुक्ति मार्ग का साधन बनती है। इस प्रकार इस गीतिकाव्य में विभिन्न तथ्यों का प्रदर्शन किया गया है।

मुख्य शब्द :

प्रस्तावना

पद्मश्री डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी जी ने गीतिकाव्य ''भक्ति–कुसुमांजलि'' में सौ भक्तिपरक गीतों के संग्रह किया है। जिसमें 'देव विषयक महिमा' और उनके स्वरूप को अध्येता के सम्मुख प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। इस काव्य ग्रन्थ में ईश्वर की महिमा, उनके क्षेत्रों का विस्तार तथा मानव जाति हेतु ईश्वर की महत्ता को प्रदर्शित किया गया है।

देवता शब्द ''दिवऋधातु जिसका अर्थ है, प्रकाशमान होना'' से निकलकर बना है।[1] कोई भी परालौकिक शक्ति का पात्र, जो अमर और पराप्राकृत है, और इसलिये पूजनीय है। हिन्दू धर्म में देवताओं को या तो परमेश्वर (ब्रह्म) का लौकिक रूप माना जाता है, या तो उन्हें ईश्वर का सगुण रूप माना जाता है।

भक्ति–कुसुमांजलि में देवता के स्वरूप को वर्णित किया गया है। वही ही पृथ्वी पर जो कुछ चर–अचर रूप दृश्यमान जगतऋका सृजनकर्ता है, परमात्मा ही सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त हैं। उस परमेश्वर की व्यापकता का वर्णन करते हैं–

स ईशो विश्वसंस्त्रष्टा, निदेष्टा पालकः शश्वत्।
त्रिलोकं व्याप्य संश्लिष्टः, अणुं प्रत्येकमाप्तोऽयम्।।
तमेकं धेहि स्व–स्वान्ते, ज्वलज्–ज्योतिः स एवैकः,।।
अविद्या–तामसं हृत्वा, धियं शुद्धां दधात्येषः।।[2]

वह परमात्मा संसार का कर्ता, नियन्ता और पालक है। वह तीनों लोकों में व्याप्त है, और प्रत्येक अणु में समाया हुआ है। वही एक प्रकाशमान तेज है। उसी ईश को अपने हृदय में रखो। वह अविद्यारूपी अंधकार को नष्ट करके शुद्ध बुद्धि देता है।

इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता में भी ईश्वर को ही सर्वस्व मानकर उसके प्रति ही समर्पण अन्ततः ईश्वर में ही समापन की स्थिति को प्रदर्शित किया गया है–

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरू।
मामेवैष्यसि युक्तवैवमात्मानं मत्परायणः।।[3]

ब्रह्म के प्रति परायण मन वाला बन, तथा ब्रह्म में ही परायण होकर ब्रह्म को ही प्राप्त होगा।

भक्ति–कुसुमांजलि में देवता ही सांसारिक दुःखों के नाशक हैं। उनके विभिन्न स्वरूपों के द्वारा मनुष्य के कल्याण में तत्परता को दृष्टिगोचर किया गया है–

त्वमिहासि भवे भय–नाश–करः, कुल–क्षेम–करः
शुभ–योग–करः,
सदयं तनुषे सुख–शान्ति–तर्ति, धन–वैभव–सिद्धि–गणं
सकलम्।।[4]

तुम ही सांसारिक भय के नाशक हो, वंश के लिए क्षेमकर्ता और धनागम के साधन हो, तुम अपनी कृपा से सुख, शान्ति, धन–वैभव और सिद्धियाँ प्रदान करते हो।

ब्रह्म ही किस प्रकार से विभिन्न रूपों को धारण कर मानव जाति हेतु कल्याणकारी होता है, श्रीमद्भगवदगीता में भी उक्त है–

रुद्राणां श🕐रश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम्।
वसूनां पावकश्चाससस्मि मेरूः शिखरिणामहम्।।[5]

ब्रह्म ही शंकर, अग्नि, धन का स्वामी कुबेर तथा सुमेरू पर्वत के रूप में व्याप्त हैं। भक्ति–कुसुमांजलि में शरीर को ही देवताओं का कोष बताया गया हैं।

शरीरे देवताः सर्वाः, शरीरे दानवा विश्वे,।
शरीरं पुण्य–पापानां, समेषां साधनं नित्यम्।।
पुरीयं देवदेवस्य, सदाऽऽवासः सदाऽऽधारा,।
अयोध्या पवनी सेयम्, इहाध्यास्ते विभू रामः।।[6]

इस शरीर में सारे देवता व सारे दानव स्थित हैं। यह शरीर सारे पुण्यों और पापों का साधन है, यह शरीर देवाधिदेव की नगरी है। वह इनमें सदा निवास करता है, उसका यह आधार है। यह शरीर ही पवित्र अयोध्या नगरी है। इसमें प्रभु राम रहते हैं।

वस्तुतः वह ईश्वर ही समस्त जगत् का परम आधार है, तथा परम कारण भी है ईशावास्योंपनिषद् में भी ईश्वर के स्वरूप के बारे में लिखा है कि ईश्वर ही बाहर–भीतर सभी जगह परीपूर्ण हैं–

''तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ।।[7]

अन्यत्र कौषीतकि उपनिषद् में भी उद्घृत है कि ब्रह्म की शक्ति से सभी इन्द्रियों में शक्ति है –

ब्रह्म दीप्यते यन्मनसा ध्यायति–0।[8]

मन, चक्षु आदि में नयन देखने–सुनने आदि की जो शक्ति है, वह ब्रह्म की ही शक्ति हैं।

भक्ति–कुसुमांजलि में वर्णित है कि विषयों में आसक्त चित्तवृत्तियों पर जिस मनुष्य ने विजय प्राप्त क लिया है, वही देव आश्रय को प्राप्त होता है–

जितं येन चितं राग–द्वन्दं, जितः काम–क्रोधादि–षट्–शत्रु
–वर्गः।
जिता वृत्तिरात्माऽवसादैक–मूला, सुरास्तं श्रयन्ते
तपःपूतमीड्यम।।[9]

जिसने मन, राग–द्वेष, काम–क्रोध आदि छः शत्रु जीत रखे हैं, जिसने आत्मा को दुःख देने वाली चित्तवृत्तियों को जीत लिया है, ऐसे पवित्र तपस्वि को ही देवता अपनाते हैं। अन्यत्र भी मनुष्यों को आसक्ति से रहित मन युक्त होकर ही मुक्ति का साधन बताया गया है–

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।
बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम्।।[10]

भक्ति–कुसुमांजलि में वर्णन है कि देवता के आश्रय हेतु मनुष्य में गुणों का भण्डारण होना चाहिए। सत्कर्मों में तत्पर व्यक्ति को ही देवता अपनाते हैं–

जीवो बद्धः स्वकृत –कुकृत्यैः,
एष स्वतन्त्रः कृति–तति–करणे।
लक्ष्यं मुक्तिस्तपसा साध्या,
सैवेष्टा निज–जीवन–शुद्ध्यै ।।[11]

सारे किए हुए कर्म सदा विद्यमान रहते हैं। जीवात्मा अपने कुकर्मों से बन्धन में पड़ता है वह कर्म करने में स्वतन्त्र है। मानव–जीवन का लक्ष्य मुक्ति है, वह तप से प्राप्त होती है जीवन की पवित्रता के लिए मुक्ति ही अभीष्ट है।

जीवन–मरण के चक्र से मुक्ति ही परम–ब्रह्म की प्राप्ति है। काम्य एवं निषिद्ध कर्मों की निवृत्ति ही देव दर्शन का साधन है। अतः इन सूक्ष्म एवं स्थूल शरीर के सर्वथा विघटन की भावना से ही भगवान की प्रार्थना करनी चाहिए। ईशवास्योपनिषद् में भी उक्त है–

वायुरनिलममृतमभेदं भस्मान्त ँ शरीरम्।
ऊँ क्रतो स्मर कृत ँ स्मर क्रतो स्मर कृत ँ स्मर।।[12]

पुरूषार्थ से युक्त पुरूष तथा विद्या की कान्ति से देदीप्यमान व्यक्ति ही देवता का प्रिय होता हैं–

यत्रास्ति तीव्रवेगः, सत्त्वोच्छ्रयो महेच्छा।
सर्वस्व–त्याग–शक्तिः, तत्रैव सन्ति देवाः।।[13]

जहाँ पर तीव्र वेग है, पुरूषार्थ और महत्वाकांक्षा है तथा सर्वस्व के त्याग की शक्ति है, वहाँ पर ही देवों का निवास है। देवता पवित्र, सुशील, सद्भावनायुक्त, प्रिय, गुणी और तेजस्वी मनुष्य को ही अपनाते हैं।

अन्यत्र भी परमेश्वर को अत्यन्त वेगवान दर्शाया गया है, परमेश्वर के स्वरूप को मन से भी अधिक वेगवान बताया गया है–

।। अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन्
पूर्वमर्षत्।।[14]

वे सर्वान्तर्यामी सर्वशक्तिमान् परमेश्वर अचल और एक हैं, तथापि मन से भी अधिक तीव्र वेगयुक्त है। जहाँ तक मन की गति है, वे उससे भी कहीं आगे पहले से ही विद्यमान हैं।

अध्ययन का उद्देश्य

पद्मश्री डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी जी ने अपने इस गीतिकाव्य में देवता के स्वरूप एवं उनके शरणागत होने के साधनों को दर्शाया है। जिसका प्रमुख उद्देश्य अध्येताओं को कल्याणकारी मार्ग प्रशस्त्र कराना है। दैव चिन्तन में रत मनुष्य का जीवन–पथ निष्कंटक होता है। देवता ही भव–बन्धनों के नाशक हैं।

निष्कर्ष

देवता ही शुभ–कर्मो के फलस्वरूप गुण हैं। सात्विक गुणों की वृद्वि करने वाले देवता ही हैं; अतः यदि मनुष्य को देवकृपा चाहिए तो उसे अपने जीवन में

भक्ति–भावना को ग्रहण करना होगा। देवकृपा से ही मनुष्य तेजस्विता से युक्त होकर कीर्ति और समृद्धि को प्राप्त करता है। देवता मनुष्य को पुरूषार्थी, उत्साही व महत्वाकांक्षी बनने की प्रेरणा देते हैं। मनुष्य अपनी इच्छा तथा कर्मो से ही देवत्व व दानवत्व दोनो की गति को प्राप्त कर सकता है; यदि मनुष्य को देवत्व की प्राप्ति अभिष्ट हो तो दिव्य भावों का आश्रय लेकर अपने अन्दर आत्मा की ज्योति का प्रकाश फैलाना ही इसका परम उद्देश्य है। मनुष्य को परिश्रमी, तपस्वी, कर्मठ, ईशभक्त, शान्त और विद्या की कान्ति से देदीप्यमान बनाना ही मूल प्रयोजन है। वेदों का अध्ययन, मनन करना ही साधन है। वेदो, उपनिषदों आदि में वर्णित उस विराट पुरूष, परमात्मा आदि अनेक रूपों में स्थित उस देवता के स्वरूप का प्रकाशन ही प्रमुख उद्देश्य है; साथ ही मनुष्य को मन, वाणी एवं कर्म तीनो का समवेत रूप से एक ज्ञान होना चाहिए। आध्यात्मिक मनुष्य को अपने अन्तः एवं बाह्य पदार्थो का ज्ञान करके अद्वैत की कल्पना करनी चाहिए। यह गीतिकाव्य भारतीय दर्शन का मूल है। इस प्रकार से द्विवेदी जी ने वेद, उपनिषद्, शास्त्र आदि से सारगर्भित पदों को एकत्रित करके मानव समाज में एक विशिष्ट ज्ञान को प्राप्त कराना ही परम उद्देश्य है, जो कि परम आध्यात्म तत्व की प्राप्ति कराता है।

अंत टिप्पणी

1. *वैदिक मैथालॉजी – मैकडॉनल*
2. *भक्ति–कुसुमांजलि – पद्मश्री डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी 1–1/1–10 वाँ पृष्ठ संख्या–1*
3. *श्रीमद्भगवद्गीता – 9/34*
4. *भक्ति– कुसुमांजलि– 30/2*
5. *श्रीमद्भगवद्गीता– 10/23*
6. *भक्ति– कुसुमांजलि– 46/2,3*
7. *ईशावास्योपनिषद् – 5वाँ मन्त्र*
8. *कौषीतकि उपनिषद् – 2/13*
9. *भक्ति– कुसुमांजलि – 88/5*
10. *मैत्रायणी उपनिषद् – 4/11*
11. *भक्ति–कुसुमांजलि– 86/7*
12. *ईशावास्योपनिषद् – 12वाँ मन्त्र*
13. *भक्ति– कुसुमांजलि– 87/3*
14. *ईशावास्योपनिषद्– 4 मन्त्र*

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *वैदिक मैथालॉजी (अन्तर्जाल)*
2. *भक्ति कुसुमांजली*
3. *श्रीमद्भगवद्गीता*
4. *ईशावास्योपनिषद्*
5. *कौषीतकि उपनिषद्*
6. *मैत्रायणी उपनिषद्*